International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

महाकवि कालिदास का प्रतिभा विचार

Buddhilal V. Rathava

Ph.D. Research Scholar, Shri Govind Guru University Godhra

भूमिका:-

भारतीय काव्यशास्त्रीय परम्परा में काव्यांगों के विमर्श में काव्यकारण 'प्रतिभा' का महत्त्व अत्यधिक स्वीकार्य है। प्रत्येक कार्य का कोई न कोई कारण होता है। तो ब्रह्मानन्द सहोदर रूप काव्य जैसे अद्‌भुत कार्य का भी कोई विलक्षण कारण होना तार्किक है। भारतीय दार्शनिक परम्परा में कार्यकारणवाद को मुक्तकण्ठ से स्वीकृति प्रदान करता है। भारतीय दर्शन की सिद्‌धान्त परम्परा का अनुपालन काव्यशास्त्रीय आचार्योंने किया है। काव्य कारण को आचार्योंने 'प्रतिभा' शब्द से अभिभूत किया।

कवि के लिए काव्य का प्रधान साधन 'प्रतिभा' है। आचार्य भामह की सम्मति में शास्त्र और काव्य का अध्ययन करने वालों में यही अन्तर होता है कि जड़ **बुद्धि** वाला मनुष्य भी गुरु के उपदेश से शास्त्र को अच्छी तरह पढ़, समज सकता है। किन्तु काव्य की स्फूर्ति उसी व्यक्ति में होती है जो प्रतिभा से सम्पन्न हो। प्रतिभा को मूल हेतु के रूप में स्वीकृति देते हुए कहते हैं - **काव्यं तु जायते जातु कस्यचित् प्रतिभावतः।**[१]

काव्य किसी प्रतिभाशाली में स्फुरित होता है। वास्तव में यह प्रतिभा रूपी काव्य उस ब्रह्म की तरह है जिसका ज्ञान केवल केवली या ब्रह्मज्ञ ही कर सकता हैं । वर्तमान सृष्टि में बहुधा लोग कहते है। लेकिन उन सभी को ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं हो पाता। उसी प्रकार यह कवि प्रतिभा भी किसी-किसी प्रतिभाशाली में कभी-कभी स्फुरित होती है। अग्निपुराण में इसके महत्त्व को बताया है -

१ काव्यालंकार, भामह कृत - १/५

नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा।
कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा।।[१]

अर्थात् संसार में मानव जन्म दुर्लभ है। यदि मनुष्य जीवन मिल भी जाय तो उसका विद्यावान दुर्लभ है। उसे विद्या भी प्राप्त हो जाय तो उसमें कवित्व शक्ति दुर्लभ है। यदि उसे कवित्व शक्ति भी प्राप्त हो जाय तो विवेक ज्ञान अत्यन्त दुर्लभ है। क्योंकि सभी मनुष्य सभी शस्त्रो को नही जानते। अतः विवेक ज्ञान अत्यन्त दुर्लभ वस्तु है और यही विवेक ज्ञान अग्निपुराणकार के मत्तानुसार काव्य प्रतिभा है।

अपारे काव्य संसारे कविरेकः प्रजापतिः ।
यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते ।।[२]

काव्यजगत् को इस भौतिक जगत् से सर्वथा विलक्षण कहा गया है। इस विलक्षण जगत् का स्रष्टा या प्रजापति 'कवि' है, जिसकी इच्छा एवं रुचि के साथ इस जगत् का संविधान एवं संघटन बदलता है। उस प्रजापति का हृदय जिस भाव की रंगों से रंगा होता है, समस्त काव्य जगत् उसी रंग की आभा से रंग जाता है। कवि भारती नियति के बन्धनों से पर, आनन्दमयी सृष्टि कही गयी है।

सुकवि अचेतन पदार्थों में प्राण फूँककर उन्हें चेतन बना लेता है, तथा उससे जैसा चाहता है, व्यवहार कराता है।

नियतिकृतनियमरहितां ल्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम्।
नवरसरूचिरां निर्मितिमादधती भारती कर्वेजयति ।।[३]

इस विलक्षण सृष्टि के अद्भुत स्रष्टा का महत्त्व किसको न स्वीकार होगा। यद्यपि कवि से काव्यरचना के सिद्धान्तों के विवेचन की अपेक्षा नहीं की जा सकती है, पर यह सत्य है कि कवि कभी-कभी अपने 'प्रातिभदर्शन' अथवा अन्तर्दृष्टि के द्वारा अनायास और सहज रूप में ही कुछ ऐसे मन्तव्यों को उन्मीलित कर देता है, जिन पर शास्त्रीय चिन्तन दीर्घकाल में एक लम्बी परम्परा से गुजर कर पहुँच पाता है अथवा नहीं भी पहुँच पाता। व्यास और वाल्मीकि के बाद ऐसे कवियों में हम कालिदास को ले सकते हैं। भारतीय चिन्तन में कवि और प्रजापति को एक दूसरे का पर्याय माना गया है। आनन्दवर्धन, मम्मट आदि आचार्यों ने कविसृष्टि की तुलना विधाता की सृष्टि से की है।

---

१ अग्निपुराण- ३३७.३.
२ ध्वन्यालोक ३/१४३
३ काव्यप्रकाश १/१

कवि और प्रजापति को परस्पर उपमित करने की प्रेरणा, संभव है, काव्यशास्त्रियों ने कालिदास से ली है क्योंकि कालिदास ने अपने रघुवंशमहाकाव्य में दिलीप के विषय में कहा है- **'तं वैधा विदधे नूनं महाभूतसमाधिना।'**[१] अर्थात् विधाता ने उस दिलीप जैसा परिपूर्ण मनुष्य विधाता के द्वारा पूर्णतः तल्लीन हो कर सामग्री के सम्यक् आधान से ही निर्मित किया जा सकता है। इसी प्रकार कलाकार के द्वारा भी काव्य का कला की सृष्टि पूर्णतया तन्मय होकर ही हो सकती है। इस तन्मयता में शिथिलता आने पर कलाकृति में भी अपूर्णता रह जाती है। कालिदास ने इस तथ्य को चित्रकला के माध्यम से समझाया है। अग्निमित्र को किसी कलाकार द्वारा निर्मित मालविका के चित्र में अधूरापन प्रतीत होता है, तो वह कहता है - **सम्प्रति शिथिलसमाधिं मन्ये येनेयमालिखिता**[२] अर्थात् अवश्य ही, चित्र बनाते समय चित्रकार समाधि में शिथिल हो गया होगा।

यहाँ पर यह स्मरणीय है कि राजशेखर ने अपने प्रतिभा के विवेचन में कालिदास का मत उद्धृत किया है। राजशेखर ने काव्य की रचनाप्रक्रिया में समाधि पर जो बल दिया है, इस संबंध में, संभव है, उन्होंने कालिदास से प्रेरणा ली हो। कालिदास स्वयं उसे श्रेणी के कवि हैं, जो समाधि की दशा में, प्रज्ञा के आलोक में काव्य की रचना करता है। इसीलिये रचना प्रक्रिया के सिद्धान्तों पर जो सूक्ष्म संकेत उन्होंने अपने काव्यों में दिये हैं, वे विचारणीय हैं। रचना के समय समाधि की इस दशा को कवि ने **'पूर्ण सवस्थ या समाहित चित्त'** भी कहा है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् में शकुन्तला के विषय में दुष्यंत कहता है-

चित्रे निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगा
रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृता नु।
स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे
धातुविभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः ॥[३]

कहने का आशय यह है कि ब्रह्म ने पहले शकुन्तला के रूप की मानस कल्पना की होगी। उस समय उनके चित्त में सौन्दर्य का उफान आया होगा। उसने चित्त को पूर्ण सत्त्वस्थ या समाहित किया होगा, तभी शकुन्तला जैसी स्त्री रत्न की सृष्टि हुई होगी।

१ रघुवंश १/१९
२ मालविकाग्निमित्रम् २/९
३ अभिज्ञानशान्तुलम् २/९

नृत्य करती मालविका के संबंध में भी कवि ने कहा है कि मालविका गीत के रस में तन्मय हो गयी थी। जिस प्रकार कवि या कलाकार में रचना करते समय तन्मयता की दशा आती है, जिसमें उसकी प्रतिभा प्रस्फुटित होती है, उसी प्रकार सहृदय या भावक में भी कलाकृति के आस्वादन के समय समाधि या तन्मयता की दशा आती है, और वह अपनी भावयित्री प्रतिभा से उसके मर्म को समझता है। दुष्यंत शकुन्तला का चित्र बनाकर देखने लगा तो वह यह एकदम भूल गया कि वह चित्र देख रहा है। कालिदास ने इस अवस्था को 'यथालिखितानुभाविता' कहा है। अग्निमित्र के चित्र को देखकर मालविका की भी यही अवस्था हो गयी थी। सम्भवतया कालिदास यह भी मानते थे कि प्रतिभा के पूर्ण उन्मीलन के लिये इस समाधि के साथ सच्ची अनूभूति भी होनी चाहिये। रघुवंश में विलाप करती सीता के पास जाते हुए वाल्मीकि का चित्र अंकित करते समय कवि ने 'श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः' कहकर शोक की श्लोक में सहज परिणति की ओर इंगित करके अनुभूति की तीव्रता को ही कविता का मूल माना है।

कालिदास भारतीय चिन्तन में विद्यमान प्रज्ञा सम्बन्धी धारणा से परिचित थे। 'मालविकाग्निमित्रम्' में नायक विदूषक से पूछता है - 'कश्चिदुपेयोपायदर्शने व्यापृतं ते प्रज्ञाचक्षुः' अर्थात् उपेय उपाय का दर्शन करने में तुम्हारा प्रज्ञाचक्षु काम कर रहा है क्या? यहाँ प्रज्ञाचक्षु का कार्यव्यापार यद्यपि एक व्यावहारिक उपाय के दर्शन से संबंधित है, किन्तु कालिदास ने इस शब्द का प्रयोग यहाँ पर नायक के मुख से विदूषक को गौरव प्रदान करने के लिये किया है, अतः उसमें अतिशयोक्तिपूर्ण ढंग से प्रज्ञाचक्षु जैसे गंभीर दार्शनिक शब्द का प्रयोग जानबूझ कर कराया है। इस प्रकार कालिदास यह मानते थे कि संसार में सामान्य **बुद्धि** के **द्वारा** जिस उपाय या वस्तुतत्त्व का दर्शन नहीं हो सकता, प्रक्षाचक्षु द्वारा उसका अनावरण संभव है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

१. कव्यप्रकाश - आचार्य मम्मट
२. प्रो.आनन्दप्रकाश त्रिपाठी, 'संस्कृत काव्याशास्त्र आधुनिक आयम' - अनुज्ञा प्रकाशन - दिल्ली.
३. अभिज्ञानशाकुतलम् - कालिदास, सरस्वती प्रकाशन, अहमदाबाद
४. कालिदास : अपनी बात, रेवाप्रसाद द्विवेदी